मानवस्वास्थ्य एवं आयुर्वेद

प्राप्तिः 03.02.2021
स्वीकृतः 05.03.2021

डॉ0 पूनम लखनपाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
आर0जी0 पी0जी0 कॉलेज,मेरठ
Email:dr.poonamlakhanpal@gmail.com

सारांश

स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः। स्वस्मिन् स्थितेर्भावः स्वास्थ्यम्। अपना, आत्मा, प्रकृति, सम्पत्ति सम्बन्धी अर्थ को प्रतिपादित करने वाले 'स्व' शब्द से बना स्वास्थ्य शब्द यहाँ प्रसंगतः 'नीरोग' एवं 'रोगों का अभाव' अर्थ में प्रयुक्त है। इसका अभिप्राय शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी स्वास्थ्य से है। सबका मूल शरीर है। वही पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन है अतः स्वास्थ्यरक्षा मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है।

संस्कृतवाङ्मय प्राचीनतम ज्ञानकोश है अतः किसी भी चिन्तनीय, विचारणीय विषय का मूल संस्कृतवाङ्मय में, विशेष रूप से वेदों में खोजने का प्रयास किया जाता है। कोविड–19 महामारी के प्रतिरोध हेतु, उससे सुरक्षा हेतु संस्कृतवाङ्मय में वर्णित मानव स्वास्थ्य, जीवन शैली, रोगनिदान, उपचार, औषधि, आचार एवं आहार आदि का पुनरीक्षण स्वाभाविक है।

'जीवेम शरदः शतम्' की कामना करने वाले वैदिक ऋषियों ने आयुर्वेद की रचना की। आयुर्वेद विश्व का प्रथम एवं अद्भुत् चिकित्सीय शास्त्र है, स्वास्थ्य का विज्ञान है। शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यग और अनुबन्ध इसके पर्याय हैं। जिस शास्त्र में हित, अहित, सुख, दुःख, आयु, उसके लिए हितकर और अहितकर (द्रव्य, गुण, कर्म), आयु का प्रमाण तथा उसका स्वरूप कहा गया है –उसका नाम आयुर्वेद है।

आयुर्वेद का प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी का रोगोपचार, रोगनिवारण है। आयुर्वेद के आठ अंग स्वीकार किये गए हैं – शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन तन्त्र तथा वाजीकरण'। इन आठ अंगों के विषयविवेचन द्वारा आयुर्वेद आयुपर्यन्त मनुष्य के स्वस्थ रहने की व्यवस्था का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द : *मानवस्वास्थ्य एवं आयुर्वेद।*

प्रस्तावना

स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः। स्वस्मिन् स्थितेर्भावः स्वास्थ्यम्। अपना, आत्मा, प्रकृति, सम्पत्ति सम्बन्धी अर्थ को प्रतिपादित करने वाले 'स्व' शब्द से बना स्वास्थ्य शब्द यहाँ प्रसंगतः 'नीरोग' एवं 'रोगों का अभाव' अर्थ में प्रयुक्त है। स्वास्थ्य का अभिप्राय मात्र शरीर से ही सम्बद्ध

नहीं है, अपितु शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी स्वास्थ्य से भी है। सबका मूल शरीर ही है अतः उसका स्वास्थ्य विविध स्वास्थ्यों का आधार है। वही सभी वस्तुओं की प्राप्ति का मूल कारण है 'सर्वस्य मूलं मानुष्यं तथा सर्वार्थसाधनम्।[1] यही शरीर पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन है–

'धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्।
तच्च सर्वसंसिद्धयै भवेद्यदि निरामयम्।।

अतः शरीर को समस्त धर्मसाधनों में प्रथम माना गया है। संस्कृत में 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'[2] कहा गया तो लोकव्यवहार की भाषा में 'पहला सुख निरोगी काया' कहा गया अतएव स्वास्थ्यरक्षा मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है –

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।[3]

संस्कृतवाङ्मय वह अथाह सागर है, जिसमें सभी विषयरत्नों की प्राप्ति सम्भव है, किसी भी चिन्तनीय, विचारणीय विषय का मूल संस्कृतवाङ्मय में, उसमें भी विशेष रूप से वेदों में खोजने का प्रयास किया जाता है। कोविड–19 महामारी के प्रतिरोध हेतु, उससे सुरक्षा हेतु संस्कृतवाङ्मय में वर्णित मानव स्वास्थ्य, जीवन शैली, रोगनिदान, उपचार, औषधि, आचार एवं आहार आदि का पुनरीक्षण स्वाभाविक है क्योंकि संस्कृतवाङ्मय में स्वास्थ्य हेतु जितने भी आयाम सम्भव है उनका विवेचन प्राप्त होता है।

हमारे वैदिक ऋषि 'जीवेम शरदः शतम्' की कामना स्वास्थ्य के साथ ही करते हैं क्योंकि 'आरोग्यं परमं भाग्यं स्वास्थ्यं सर्वार्थसाधनम्।' आयुर्वेद को ऋग्वेद अथवा अथर्ववेद का उपवेद मानने में मतैक्य नहीं है तथापि विश्व का प्रथम एवं अद्भुत् चिकित्सीय शास्त्र आयुर्वेद ही है। आयुर्वेद स्वास्थ्य का विज्ञान है। आयुषः वेदः आयुर्वेदः। इण् गतौ धातु से उसि प्रत्यय लगकर आयु शब्द बनता है।

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते।।[4]

शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यग और अनुबन्ध इसके पर्यायवाची हैं।

शरीर, इन्द्रिय, मन, आत्मा इन्हें परस्पर धारण करने का स्वभाव होने से आयु को 'धारि' कहते हैं। यावच्चेतन शरीर आयु के रहने से इसे 'जीवित' कहते हैं।[5] नित्य प्रतिक्षण गमनशील शिथिलीभाव होने से 'नित्यग' कहते हैं। अपरापर शरीर के साथ सम्बन्ध कराने के कारण इसे 'अनुबन्ध' कहते हैं।

वेद–विद् ज्ञाने, सत्तायाम्, विचारणे, चेतनाख्याननिवासेषु और विदलृ लाभे धातु से निष्पन्न वेद शब्द ज्ञान, सत्ता, विचार, भान और प्राप्ति अर्थ का द्योतक है अतः आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त कराने वाला आयुर्वेद है – आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वाऽऽयुर्विन्दति इत्यायुर्वेदः।[6]

अनेन पुरुषो यस्मात् आयुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः।।

जिस शास्त्र में हित, अहित, सुख, दुःख, आयु, उसके लिए हितकर और अहितकर (द्रव्य, गुण, कर्म), आयु का प्रमाण तथा उसका स्वरूप कहा गया है – उसका नाम आयुर्वेद है।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[7]

वेदज्ञ पुरुषों ने इसे आयु का पुण्यतम वेद कहा है जो दोनों लोक अर्थात् इह लोक और परलोक में हितकर है। यह अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों को देने वाला है।[8] यह हिताहित के साथ व्याधि का निदान और शमन भी करता है –

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते।।

आयुर्वेद सम्बन्धी तत्त्व सर्वप्रथम ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में प्राप्त होते हैं। पुराणों एवं स्मृतियों में शौचाचार के माध्यम से स्वास्थ्य का उपदेश प्राप्त होता है। भक्ष्याभक्ष्य, देहशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, मनःशुद्धि तथा प्रायश्चित आदि से कर्मशुद्धि का निर्देश भी उपलब्ध है। रामायण, महाभारत तथा साहित्यिक ग्रन्थों में भी आयुर्वेदिक चिकित्सीय तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, आचार्य वाग्भट का अष्टांग हृदय, अष्टांग संग्रह, भावमिश्र का भावप्रकाश, आचार्य माधव का माधवनिदान, आचार्य शार्गधर की शार्गधर संहिता और शार्गधर पद्धति तथा इन ग्रन्थों पर अनेक टीकाएँ आयुर्वेद की परम्परा को पुष्ट करती हैं, जिनमें शरीर रचना विज्ञान से लेकर, रोग, रोगलक्षण, रोगपरीक्षा, रोगनिदान के विविध उपाय एवं पद्धति, औषध विज्ञान, शल्य चिकित्सा आदि का विस्तृत, प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक विवेचन उपलब्ध होता है।

आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी का रोगोपचार, रोग निवारण है। प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च[9] आहार विहार अैर आचार का संतुलित प्रयोग स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक है। यदि कदाचित् मिथ्या आहार विहार के कारण रोग उत्पन्न हो जाएँ तो उसका शमन करके पुरुष को स्वस्थ करना, प्राकृतभाव में स्थापित करना आयुर्वेद का द्वितीय प्रयोजन है।[10]

आयुर्वेद के आठ अंगों स्वीकार किये गए हैं – शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन तन्त्र तथा वाजीकरण'। इन्हीं अष्टांगों में शल्य चिकित्सा, उसके उपकरण, विविध अंगों के रोग, शारीरिक एवं मानसिक रोग, कुमार (बालक) के रोग, धात्री, माता, पालन पोषण एवं चिकित्सा, सर्पकीट आदि के दंश से उत्पन्न विष तथा विविध विष एवं उनकी शान्ति के उपाय, रसायनों के माध्यम से आयुष्य–बल–बुद्धि की वृद्धि और रोगनिदान, सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी विविध विषयों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। इन आठ अगों के विषयविवेचन द्वारा आयुर्वेद आयुपर्यन्त मनुष्य के स्वस्थ रहने की व्यवस्था का प्रयास करता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि स्वस्थ कौन है? जो स्व में स्थित रहे वह स्वस्थ है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वभाव होता है, जिसके अनुसार उसका स्वधर्म और स्वकर्म संचालित होता है। यही

प्रकृति है। इस प्रकार अपनी प्रकृति में स्थित रहने वाला स्वस्थ तथा उसका प्राकृतभाव स्वास्थ्य है। इसके विपरीत वैकृत भाव रोग है[1]

प्रकृतिस्थ व्यक्ति को प्रकृति के आठ रूप आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रकृति के आठ रूप हैं – जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु। ये रूप यदि निर्मल, निर्दोष और स्वाभाविक हैं तो यह सम्पूर्ण जीव–जगत् स्वस्थ रहता है। इसी आयुर्वेदीय यथार्थ को कालिदास ने अष्टमूर्ति 'शिव' अर्थात् कल्याण की प्रार्थना से अभिव्यक्त किया है।[11]

आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है –

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[12]

जिसके त्रिदोष (वात पित्त कफ) सम हों, जिसकी अग्नि–जठराग्नि (पाचनक्रिया) सम (ठीक) हो, जिसकी सप्त धातु (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र आदि) सम (ठीक निर्माण हो रहा) हो तथा दूषित पदार्थों (मल, मूत्र, स्वेद आदि) की विसर्जन क्रिया सम हो, इन्द्रियाँ, आत्मा तथा मन प्रसन्न हो वह स्वस्थ है।

इस स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आयुर्वेद त्रिदोषों को सम रखने, जठराग्नि को उचित रूप से उदीप्त करने (अधिक नहीं) धातुओं की उचित उत्पत्ति होने, विसर्जनप्रक्रिया को ठीक रखने की विस्तृत चर्चा करता है। शरीर के स्वस्थ होने पर मन प्रसन्न होता है और प्रसन्न मन से आत्मा प्रसन्न होती है। इसीलिए कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है।

मानव स्वास्थ्य के तीन आधार बताए गए हैं, आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य। स्वास्थ्य के लिए तीनों का ही अपना महत्त्व है किन्तु इसका प्रथम सोपान है आहार।

सुश्रुत के अनुसार आहारादेवाभिवृद्धिर्बलमारोग्यं वर्णेन्द्रियप्रसादश्च। .....तथा ह्याहारवैषम्यादस्वास्थ्यम्[13]

आहार ही से प्राणियों के शरीर की वृद्धि, बल, आरोग्य, वर्ण तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता रहती है तथा आहार की विषमता से अस्वास्थ्य (रोग) उत्पन्न होता है।

आयुर्वेदशास्त्र में एक प्रश्नोत्तर प्राप्त होता है

कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक्।
हितभुक् मितभुक् ऋतभुक्।।

प्रश्न है रोगरहित कौन है? उत्तर है हिताहार, मिताहार और ऋत या ऋतु आहार लेने वाला। तीसरे पद के रूप में ऋत और ऋतु दोनों पद का प्रयोग मिलता है। हित अर्थात् कल्याणकारी, मित अर्थात् सीमित, उचित मात्रा में। ऋत का अर्थ है उचित प्रकार से अर्जित और ऋतु का अर्थ है उस ऋतु में उत्पन्न होने वाला।

हिताहार से अभिप्राय है कल्याणकारी। वह आहार जिसमें मात्रा, काल, क्रिया (संस्कार, संयोग) भूमि (रोगी और देश) देह और दोष (वात, पित्त, कफ और रोग) की दृष्टि से हितकारी

तथा व्यक्ति की प्रकृति और अवस्था के अनुरूप हो। ऐसे आहार का उपयोग ही व्यक्ति की वृद्धि करता है और अहितकर आहार का उपयोग रोग की वृद्धि का कारण है। हिताहारोपयोग एक एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति, अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधीनां निमित्तमिति।[14]

सभी आहार सदैव हितकर अथवा सदैव अहितकर नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ विष अहितकर है, परन्तु यदि उसे उचित निर्धारित मात्रा में दिया जाए तो अमृत के समान होता है। मधु और घी दोनों ही हितकारी हैं किन्तु यदि इन्हें समपरिणाम में मिला दें तो ये विष्श का प्रभाव देते हैं। चरक सूत्रस्थान अ0 25 तथा सुश्रुत सूत्रस्थान अ0 46 में आहारों के विविध भेद एवं गुण तथा उनके कर्म विस्तार से बताये गए हैं।

मिताहार से अभिप्राय है उतनी ही मात्रा में ग्रहण करना जितना आवश्यक एवं उपयोगी हो, सुपाच्य हो और हानिकर न हो। स्वाद एवं रुचि के अनुरुप होने के कारण आवश्यकता से अधिक गृहीत आहार कष्ट एवं रोगप्रद हो जाता है। सामान्यतः कहा जाता है कि भूख से कोई नहीं मरता किन्तु अधिक खाने से मृत्यु हो सकती है।पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।

यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्।।[15]

पथ्यापथ्य हिताहित निश्चित नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त अवस्थाओं में वह भी परिवर्तित हो जाता है जैसे घी पथ्य है। मात्रा से अधिक खाया जाए तो अपथ्य है। वसन्तकाल में अपथ्य है। विरुद्ध द्रव्यों जैसे मधु के साथ संस्कृत अपथ्य है। अतिस्थूल पुरुष के लिए अपथ्य है। कफ में अपथ्य है। अतः एक ही पथ्य मात्रादि के अवस्थान्तरों को प्राप्त कर अपथ्य हो जाता है।

ऋतका अर्थ है – उचित, सही, ईमानदार, सच्चा, स्थिर और निश्चित नियम, विधि, पावन प्रथा, सच्चाई, अधिकार आदि।[16] भारतीय संस्कृति में जब शौच या शुचिता की चर्चा की जाती है तो वहाँ अर्थशुचिता का भी प्रसंग आता है। उस दृष्टि से नियमपूर्वक, उचित विधि से, अर्जित किया गया धन अथवा अन्न जिसका व्यक्ति अधिकारी है वह ऋत है अर्थात् ऐसा ऋताहार करने वाला ऋतभुक् रोगी नहीं होता क्योंकि जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन। इस लोकोक्ति के अनुसार शुद्ध अर्जित आहार व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक बल देता है और आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करता है।

आधुनिक व्याख्याकार 'ऋत' के स्थान पर 'ऋतु' पद का प्रयोग करते हैं जिसके आधार पर तत्तद् ऋतु में उत्पन्न एवं प्राप्त होने वाले भोज्य पदार्थ शरीर के अनुकूल होते हैं और jks mRiUu ughadjrsAvr% lkef; d (seasonal) आहार करने वाला व्यक्ति भी रोगी नहीं होता।

आहार की इसी महत्ता को श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने भी प्रकट किया है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[17]

अतः योगसिद्धि का प्रथम सोपान भी उचित आहार ही है अतएव उन्होंने त्रिविध –सात्त्विक राजसिक और तामसिक आहार का भी उल्लेख किया है।[18] अतएव इस लोक और

परलोक में सुख की अभिलाषा करने वाले व्यक्ति को हितकारी आहार, आचार और चेष्टाओं (कर्म) में प्रयत्नशील रहना चाहिए।[19]

आयुर्वेदशास्त्र आहार चर्चा के अन्तर्गत पान, अशन, भक्ष्य, लेह्य के उपयोगभेद से चार प्रकार के आहारों शूकधान्य, शमीधान्य, शाक, फल, वृक्षाम्ल, हरित, माँस, मद्य, जल, दुग्ध, इक्षु, चटनी, विविध तैल आदि 12 वर्गों में कहे गए भक्ष्यों के गुण, दोष, दोष परिहार, मात्रादि अवस्थाओं के आधार पर ग्राह्य अग्राह्य, हिताहितकारी, पथ्यापथ्य तथा हेयोपादेयता आदि का वर्णन करता है। इतना ही नहीं भोजन को पकाने, परोसने की विधि एवं क्रम का विधान बताता है।

इस प्रकार मानवस्वास्थ्य के प्रथम स्तम्भ आहार से लेकर विविध रोग, रोगोपचार, ओषध–औषधि, उनके गुण, दोष, प्रभाव बताने वाला आयुर्वेद रोगोत्पत्ति से पूर्व ही सुरक्षा के उपायों का भी उपदेश देता है। प्रज्ञापराधों का त्याग, इन्द्रियसंयम, स्मृति, देश, काल तथा आत्मा का यथावत् ज्ञान, साधु पुरुषों के आचरण का अनुपालन, इनके द्वारा आगन्तु रोग रुक जाते हैं। यही इनके उत्पन्न न होने देने का मार्ग है। आप्तजन के उपदेशों का यथावत् ज्ञान और तदनुरूप कर्म यही दो उपाय रोगों से बचाते हैं और यदि रोग उत्पन्न भी हो जाएं तो उन्हें शान्त कर सकते हैं। उचित निद्रा और शास्त्रविहित ब्रह्मचर्य मनुष्य के स्वास्थ्य और आयुवृद्धि के अनिवार्य तत्त्व हैं।

ऐसी सूक्ष्म चर्चा करने वाला आयुर्वेद शास्त्र प्राचीनतम जीवन विज्ञान है जो वर्तमान में भी प्रासंगिक एवं उपयोगी है। पाश्चात्य अन्धानुकरण और शीघ्रलाभ के लोभ में भारतीय जनमानस अपनी प्राचीन, दीर्घगामी और सार्वकालिक विद्याओं से विमुख हो चला है और उसके दुष्परिणामों का भी भागी बना है, किन्तु अपने उसी परम्परागत शास्त्रज्ञान के यत्किंचित् प्रयोग के बल पर कोरोना जैसी महामारी से अपेक्षाकृत सुरक्षित रहने में सफल भी हो पाया है। आवश्यकता है अपनी पुरातन विद्याओं में निष्ठा रखकर उन्हें पुनर्जाग्रत करने और प्रायोगिक बनाने की। आज भी विश्व कोरोना महामारी के काल में भारत के उपायों और प्रयोगों की ओर दृष्टि लगाए हैं। प्राचीनकाल में अपनी विद्याओं के लिए लब्धप्रतिष्ठ भारत पुनः अपने गौरव को ऐसे ही शास्त्रों के माध्यम से प्राप्त करने में समर्थ है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।[20]

सन्दर्भ ग्रंथ

1. स्कन्दपुराण VII 1986 नागपब्लिशर्स, दिल्ली *'माहेश्वर खण्ड कौमारिक खण्ड'* 2/50–51
2. कालिदास कुमारसंभवम् 1996 भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली 5/33
3. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'निदानस्थान'* 6/11
4. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 1/41
5. अमरकोष सं0 1975 मुंशी नवलकिशोर मुद्रणालय, लखनऊ 2/8/120
6. सुश्रुत IX1995 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी *'सूत्रस्थान'* 115

7. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 1 / 40
8. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 1 / 42
9. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 30 / 24
10. सुश्रुत IX1995 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी *'सूत्रस्थान'* 15 / 47
11. कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1995 भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी 1 / 1
12. सुश्रुत IX1995 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी *'सूत्रस्थान'* 15 / 48
13. सुश्रुत IX1995 चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी *'सूत्रस्थान'* 46 / 3
14. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 25 / 30
15. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 25 / 44
16. आप्टे, वामनशिवराम II1969 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'संस्कृतहिन्दीकोष'* पृ0 **223**
17. श्रीमद्भगवद्गीता 139, सं0 2046, गीता प्रैस, गोरखपुर 6 / 17
18. श्रीमद्भगवद्गीता 139, सं0 2046, गीता प्रैस, गोरखपुर 17 / 7–10
19. चरक IX1975 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली *'सूत्रस्थान'* 9 / 59
20. श्रीमद्भगवद्गीता 139, सं0 2046, गीता प्रैस, गोरखपुर 16 / 24